(देश देशान्तरों में प्रचारित, सबसे सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

वार्षिक मूल्य २) सम्पादक—श्रीराम शर्मा आचार्य ।

वर्ष ६ | मथुरा, १ अप्रैल सन् १९४५ ई० | अंक

दुःखों को देखकर डरिये या घबराइए नहीं ।

आप दुःखों को देखकर डरिये मत, घबराइये मत, काँपिये मत, उन्हें देखकर चिन्तित या व्याकुल मत हूजिए, वरन् उन्हें सहन करने के लिए तैयार रहिए । जब दुख आपके सामने आवें तो छाती खोलकर खड़े होजाइए और मुसकराते हुए साहस के साथ कहिए :—

"ऐ आने वाले दुःखो ! आओ !! ऐ मेरे बालको, चलो आओ ! अपनी भूलों द्वारा मैंने ही तुम्हें उत्पन्न किया है, मैं ही तुम्हें अपनी छाती से लगाऊंगा । दुराचारिणी वेश्या की तरह तुम्हें 'जार-पुत्र' समझ कर छिपाना या भगाना नहीं चाहता, तुम सती साध्वी के धर्म पुत्र की तरह आओ, मेरे आँचल में क्रीड़ा करो । मैं कायर नहीं हूं जो तुम्हें देखकर रोऊं, मैं नपुंसक नहीं हूं जो तुम्हारा भार उठाने से गिड़गिड़ाऊं, मैं मिथ्याचारी नहीं हूं जो अपने किये हुए कर्म का फल भोगने से मुँह छिपाता फिरूँ । ऐ कष्टो ! मेरे अज्ञान के कुरूप मानस पुत्रो !! चले आओ, मेरी कुटी में तुम्हारा स्वागत है । मैं तुम्हें देखकर घबराता नहीं, डरता नहीं, तुमसे बचने के लिए किसी की सहायता नहीं चाहता वरन् एक कर्तव्य निष्ठ बहादुर मनुष्य की तरह तुम्हें स्वीकार करता हूं ।"

दुःख एक दयालु डाक्टर की तरह है जो एक बार फोड़े को चीर कर चिर संचित मलों की वेदनाओं को सदा के लिए दूर कर देता है । ऐसा डाक्टर हमारे आदर का पात्र होना चाहिए आवे तो हमारे घर में उसका भी सुख की भांति स्वागत होना चाहिए । दुख और सुख को

शठे शाठ्यं समाचरेत् ।

(लेखक—श्री० स्वामी चिदानन्द जी सरस्वती)

१—मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने छल से बाली का बध किया था। सतत्त होकर युद्ध में बाली को मारने वाला उस समय कोई न था, जो आमने-सामने उससे युद्ध करता—उसकी आधी शक्ति, वह अपने आकर्षण से छीन लेता था—इसलिए श्री रामचन्द्र जी ने वृक्षों के पीछे छुपकर—उसके सामने न आकर—युद्ध करने का नाम सत्य नहीं था। परन्तु राष्ट्र हितार्थ राम उसे मारना चाहते थे. अतः साधारण नियम का भंग करके स्वयं वृक्ष की आड़ में खड़े हो राम ने सुग्रीव के राज तथा स्त्री के अपहर्त्ता ज्येष्ठ भ्राता बाली का बाण द्वारा बध किया।

२—बिहार का राजा जरासिन्ध जो कि अत्यधिक अत्याचारी था। जिसने छोटे-छोटे ८० राजाओं के राज को छीन रक्खा था, और बहुत से राजाओं की स्त्रियों को हर कर अपने महलों में रखा हुआ था। उस समय जरासिन्ध का मुकाबिला करने की किसी में सामर्थ्य न थी—इसलिए उसको श्री कृष्ण जी ने एक चाल से मरवाया था। वे अर्जुन और भीम के साथ स्वयं ब्राह्मणों का वेश बनाकर जरासिन्ध के अन्तपुर में पहुँचे और वहां आपने अपने आपको ब्राह्मण कहा और उसके महलों में ही भीम से जरासिन्ध का मल्ह युद्ध में वध करवाया।

३—कौरव-पांडव कुलगुरु महारथी द्रोणाचार्य महाभारत के संग्राम में जब पांडवों की सेना का संहार कर रहे थे और पांडवों के बहुत से वीर द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में मारे जा चुके तो उनकी अश्वत्थामा मारा गया का कोला[illegible] द्रोणाचार्य के पुत्र का नाम भी [illegible] अपने पुत्र की मृत्यु सुन कर द्रोणा[illegible] गया, और घबरा गया। इ[illegible] द्रोण के बाण अब सीधे न आते [illegible] को समझाया कि अब अवसर [illegible] मार! तब उसने बाणों से द्रोणा[illegible] किया। छलसे द्रोणाचार्य को यदि श्री कृष्ण जी [illegible] समय न मरवाते तो पाँडवों की विजयअसम्भव [illegible]

४—कर्ण एक महाबली योद्धा था। आम[illegible] सामने के युद्ध में अर्जुन द्वारा उसे पराजित क[illegible] असम्भव था—इसलिए श्री कृष्ण जी ने अर्जुन द्व[illegible] उसे छल से मरवाया। वह भी ऐसे समय में ज[illegible] कर्ण के घोड़े घायल हो गये थे, और उसका [illegible] कीच में फँसा हुआ था और वह रथ से उतरा हु[illegible] था, उसी समय अर्जुन को समझा कर कर्ण [illegible] वध करवाया। कर्ण ने छलसे अर्जुन पुत्र अभिम[illegible] को मारा था—श्रीकृष्ण ने भी उसका वैसा प्रतिकार (बदला) लिया।

५—छत्रपति शिवाजी एक बार जब धोखे [illegible] औरंगजेब के कैदी होकर आगरे में नजरबन्द थे [illegible] उन्होंने यह कह कर कि मैं मस्जिदों और मन्दिरों [illegible] मिठाई बांटना चाहता हूं—औरंगजेब की [illegible] मिठाई का प्रबन्ध होने पर मिठाई की एक [illegible] छिपकर बैठ आगरे से औरंगजेब के चङ्गु[illegible] भागे। और फिर औरंगजेब को अच्छी तर[illegible] चने चबाये।

ये हैं वे कुछ थोड़े से दृष्टान्त जब कि [illegible] आर्य वीरों ने छलियों देश व धर्म द्रोहियों [illegible] और चतुरता से मारा तथा देश की व अप[illegible] रक्षा भी की। यदि वे ऐसा न करते तो आज [illegible] में उनका नाम और ही तरहसे लिखा जाता [illegible]

मथुरा, १ अप्रेल सन् १९४५ ई०

जड़, अपने अन्दर है।

दार्शनिक इमरसन कहा करते थे कि—"यदि मुझे नरक में रहना पड़े तो मैं अपने उत्तम स्वभाव के कारण वहां भी स्वर्ग बना लूँगा।" जिसकी मनोभावनाऐं, विचार धाराऐं, मान्यताऐं उच्चकोटि की, सात्विक हैं उसके लिये सर्वत्र स्वर्ग ही स्वर्ग है, आनन्द, प्रेम, सद्व्यवहार ही उसे चारों ओर उमड़ा पड़ता हुआ दीखता है, उसके लिए इस लोक में या परलोक में कहीं भी नरक नहीं है। किन्तु जिसका दृष्टिकोण निकृष्ट है, नीति अच्छी नहीं है, भावनाऐं संकुचित हैं, उसके लिए नरक का दावानल ही चारों ओर जल रहा है, न तो उसे इस लोक में संतोष है और न परलोक में ही रहेगा। नरक उसके हृदय में भरा हुआ है इसलिए जहां कहीं भी वह जायगा छाया की तरह नरक उसके पीछे पीछे लगा फिरेगा। सब लोग उसे धोखेबाज, दुष्ट, सताने वाले और स्वार्थी दिखाई देंगे, मनुष्य भी ऐसे ही और स्वर्ग के देवता भी ऐसे ही।

उपरोक्त पंक्तियों में हमारा तात्पर्य यह बताने का है कि अपनी विचारधारा और मानसिक अव्यवस्था के ऊपर संसार का प्रिय और अप्रिय होना निर्भर है। इसलिये हम अपने जीवन को जैसा बनाना चाहते हैं स्वेच्छा पूर्वक बना सकते हैं। जिन परिस्थितियों में हम रहना चाहते हैं, जो वस्तुऐं प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें निस्सन्देह प्राप्त किया जा सकता है। इस प्राप्ति का सर्व प्रधान उपाय यह है कि अपने आप को अनुकूल बनावें, अपने अन्दर वह बल, योग्यता और आकर्षण पैदा करें जिसके द्वारा इच्छित वस्तुओं को प्राप्त किया जा सके। किसी वस्तु को प्रचुर मात्रा में प्राप्त करने और उसे अधिक समय तक टिकाये रखने के लिये व्यक्तिगत विशेषताओं की आवश्यकता है। किसी की कृपा से कुछ सुख सुविधा प्राप्त हो भी जाय तो वह न तो अधिक समय ठहरती है और न वह उसकी उन्नति में सहायक होती है, वरन उलटा विपत्ति में फँसा देती है। दुर्गुणी मनुष्य को यदि कहीं से एक लाख रुपया अनायास ही मिल जाय तो वह फैशन-परस्ती आदि दुष्कर्मों में थोड़े ही समय में उसे फूँककर बराबर कर देगा। उसके हाथ बीमारी, बदनामी, दुश्मनी, शोक, पश्चात्ताप ही रहेंगे। उस रुपये से जितना सुख उठाया था उसकी अपेक्षा अनेकों गुना दुख शोक उसके पल्ले बँध जायगा, इस प्रकार अन्ततः वह एक लाख रुपया उस दुर्गुणी मनुष्य की भीतरी और बाहरी अशान्ति का ही कारण बनेगा। उसका लोक और परलोक उससे बनेगा नहीं, उलटा बिगड़ेगा।

एक उत्तम प्रकृति का, भले स्वभाव का आदमी छोटे घर में पैदा होकर भी अपने सद्गुणों के कारण लोगों के हृदयों में अपने लिए स्थान प्राप्त करता है। रुपया कमाता है, बड़ा बनता है, यशस्वी होता है, प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, चारों ओर से उस पर सहायता बरसती है, सच्चे मित्र उसके स्वभाव सुगन्ध के कारण उसके आस पास सदा ही मँडराते रहते हैं। ऐसी प्रकृति के मनुष्य के लिए उसकी गरीबी भी अमीरी से बढ़ कर है। जो आनन्द और

उल्लास बदमिजाज अमीरों को कभी स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होता उसे वह अपनी मामूली दशा में भी प्राप्त करता है।

सुखों की कुंजी लोग बाहर तलाश करते हैं। अमुक देवी देवता, ग्रह, नक्षत्र, भूत पलीत, जन्त्र तन्त्र, राजा रईस, सन्त महन्त की कृपा से जो लोग अपने को सुखी बनाने की आशा करते हैं वे भारी भूल में हैं। दुनियाँ में केवल एक ही शक्ति है जो मनुष्य का उत्थान पतन करती है वह है—"अपनी मानसिक स्थिति" जो कोई महत्व को प्राप्त हुआ है इसी महाशक्ति की कृपा से हुआ है, जिसका नाश हुआ है इसी के श्राप से हुआ है। दूसरों की सहायता से हम अपनी इस शक्ति को उत्तमता के द्वारा स्थायी महत्व को प्राप्त कर सकते हैं किन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि हमारी अयोग्यताऐं जहां की तहां बनी रहें और अनायास ही सुख सौभाग्य प्राप्त हो जाय। चोरी, जुआ, बेईमानी आदि के द्वारा कोई व्यक्ति थोड़े समय में—अयोग्यताऐं होते हुए भी धनी बन सकता है, परन्तु स्मरण रहे वह धन उसे आन्तरिक सुख जरा भी न दे सकेगा, उलटी उसे अशान्ति और क्लेश की जलती ज्वाला में धकेल देगा। ऐसी सम्पत्ति का होना, न होने से भी बुरा है।

यदि आप चाहते हैं कि समाज में आपका आदर हो, हर जगह आपकी बात पूछी जाय, सर्वत्र आपकी प्रशंसा हो, सब लोग आपके ऊपर स्नेह रखें, सच्चे मित्रों और सहायकों की वृद्धि हो, स्वास्थ्य उत्तम रहे, किसी वियोग या विपत्ति का सामना न करना पड़े, घर वाले सिर आंखों पर रखें, बड़े बूढ़े आशीर्वाद दिया करें, छोटे आज्ञा पालन में खड़े रहें, पत्नी प्राण के समान प्रिय समझे, बराबर वालों की भुजा समझे जावें, समाज आपको अपना नेता माने, आपके चहरे पर प्रसन्नता नाचती रहे, अन्तःकरण आनन्द में डूबा रहे, [illegible] की अपेक्षा आपके यहां काम करना पसन्द करें, ग्राहक आपको छोड़ना न चाहें, यह सब बातें आपको प्राप्त हो सकती हैं, निश्चय हो सकती हैं। हम शपथ पूर्वक कहते हैं कि उपरोक्त सिद्धियों को प्राप्त करना मनुष्य के लिये बिलकुल आसान है। यदि तीव्र इच्छा और दृढ़ साधना किसी में मौजूद है तो उसके लिए उपरोक्त स्थिति को प्राप्त करना एक हँसी खेल के समान है।

शास्त्र कहता है 'सत्वं सुखं संजयति" सत् से सुख उपजता है। यदि आप अपने को सुखी बनाना चाहते हैं तो अपने अन्दर दृष्टि डालिये, अपनी बुराइयों का सुधार कीजिए, अपने में सद्गुण उत्पन्न कीजिये। 'स्व' को सँभालते ही 'पर' सँभल जाता है। दुनियाँ दर्पण है, इसमें अपनी ही शकल दिखाई पड़ती है। पक्के मकान में आवाज गूँजकर प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है इसी प्रकार अपने गुण, कर्म, स्वभावों के अनुरूप प्रत्युत्तर संसार से मिलता है। हम जिधर चलेंगे छाया भी पीछे पीछे उधर ही चलेगी। इसलिए उचित है कि सुख प्राप्त करने का अपने को अधिकारी बनावें, अपने आचरण और विचारों में समुचित संशोधन करें यही सफलता का मार्ग है।

नम्र होने पर तुम वीर बन सकते हो, मितव्ययी होने पर उदार बन सकते हो, दूसरों के सामने अपने को दिखाने और बड़ाई करने से बचो तो तुम उनके नेता बन सकते हो।

× × ×

अच्छे सैनिक झगड़ालू नहीं होते, अच्छे योद्धा आपे से बाहर नहीं होते। सर्व श्रेष्ठ विजेता वे हैं जो बिना युद्ध किये अपने बैरियों के हृदय पर विजय पाते हैं।

सब अनर्थों की जड़—
मानसिक दासता ।

(ले०—प्रोफ़ेसर श्री मोहनलाल जी वर्मा, M.A LL.B.,
अध्यक्ष-दर्शन विभाग, हर्बर्ट कॉलिज, कोटा)

मानसिक दासता सब प्रकार की दासताओं की ाी है। जब शरीर का चालक मन अशक्त है तो : का अणु अणु अपाहिज़ है। उसकी शक्ति को शित होने का कोई विशिष्ट मार्ग नहीं, उसका निश्चित उद्देश्य नहीं। वह एक ऐसी नौका है जिधर चाहे बहक सकती है।

समस्त मानव जीवनकी प्रवर्त्तक 'भावनाएँ' होती हैं। इन भावों का अनुसरण हमारी मूल प्रवृत्तिएँ किया करती हैं। भावनाएँ मन में विनिर्मित होती हैं। उनका उच्चाशय या निंद्य स्वरूप मन की प्रेरक शक्तियों पर अधिष्ठित है।

मन के अपाहिज हो जाने पर आत्मा जड़ से भी गया बीता हो जाता है। उसकी महत्त्ववाकाँक्षा का निरन्तर क्षय होता रहता है। आशाओं पर तुषारापात होता है। ऐसा व्यक्ति नहीं जानता कि कि वह क्या है ? उसका वास्तविक स्वरूप क्या है ? उसे किस दिशा की ओर अग्रसर होना है ? दासता की कुलिश-कठोर बेड़ियों में जकड़ा हुआ मन स्वयं अपना ही नहीं, अपने स्वामी का भी सर्वनाश कर देता है।

जो कुछ न्यूनता, भय, भ्राँति तुम अपने आप में पाते हो उसका कारण दिमाग़ी गुलामी है। अपने विषय में जो डरपोक विचार धारा तुम रखते हो, ...नत्व की ग्रन्थि जिसका निर्माण तुमने भयभीत कर लिया है वह तुम्हारी गुलामी का कडुआ । अपने विषय में जो धारणाएँ तुमने निर्मित उनका आदि स्रोत तुम्हारी मानसिक दासता । अपने अंतरप्रदेश में तुमने अपना जो चित्र खीचा है या तुम्हारे ऊपर दूसरों का जो जादू चलता है, वह स्वयं तुम्हारी मानसिक दासता की प्रतिच्छाया है। मानसिक गुलामी ही हमें दरिद्र, दुःखी, चिन्तत एवं आपत्तियों का शिकार बना रही है।

मानसिक दासता की उत्पत्ति—हम दूसरों को डरपोक देखते हैं तो समझ लेते हैं कि ऐसे ही हमें भी होना चाहिए। ऐसा ही मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है। हम अपने चारों ओर ऐसा ही कुत्सित वातावरण देखते हैं। हम विगत कटु अनुभवों को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देते हैं। हम स्वयं विचार शक्ति का उपयोग न कर विचार की गति को पङ्गु कर डालते हैं। हम स्वयं निज मानसिक शक्ति का उपयोग न कर उदाहरण, दूसरे की प्रणाली पर निज जीवन को अधिष्ठित कर देते हैं। हम सोचते हैं कि जो हमारे पूर्वज कर गए हैं, जो हमारे नेतागण चरितार्थ कर रहे हैं जो कुछ हमारे अन्य भ्राताओं ने अर्जन किया है वही हमारा भी साध्य है। उसी को हमें प्राप्त करना चाहिए। हम अपने वातावरण से दासता ही दासता एकत्रित करते हैं। मन में कूड़ा कर्कट एकत्रित करते रहते हैं, कालान्तर में मन का वातावरण कलुषित हो जाता है। हमारा समाज, कभी हमारा गृह, कभी हमारा वातावरण या जीविका उपार्जन का कार्य मानसिक दासता का सहायक बन जाता है तथा हमें दीन दुनियां कहीं का भी नहीं छोड़ता। कृत्रिम साधनों द्वारा मन का विकास रुक जाना ही मानसिक दासता है।

मानसिक दासत्व एक प्रकार का रोग है—हम मानसिक दासत्व को एक मनोवैज्ञानिक रोग मान सकते हैं। अनेक प्रकार के भ्रम, अभद्र-कल्पनाएँ, निराशा, निरुन्साह इत्यादि मनः क्षेत्र में आत्महीनता की जटिल ग्रन्थि उत्पन्न कर देते हैं। कालांतर में ये ग्रन्थियां अत्यन्त शक्तिशाली हो उठती हैं। फिर दिन प्रतिदिन के विविध कार्यों में इन्हीं की प्रतिक्रिया (Reaction) चलता रहता है। हमारे डरपोकपन के कार्य प्रायः इसी ग्रन्थि के परिणाम स्वरूप होते हैं। अनेक मन गढन्त विरुद्ध संस्कार स्मृति प्र...

अङ्कित रहते हैं। पुरानी असफलताएँ, अप्रिय अनुभव, अव्यक्त मन (Un-conscious mind) से चेतन मन में प्रवेश करती है तथा प्रत्येक अवसर पर अपनी रोशनी फेंका करती है। जैसे एक बारीक कपड़े से प्रकाश की किरणें हलकी हलकी छन कर बाहर आती हैं उसी प्रकार आत्म हीनता तथा दासत्व की ग्रंथियों की झलक प्रायः प्रत्येक कार्य में प्रकट होकर उसे अपूर्ण बनाया करती है। कभी २ मनुष्य की शारीरिक निर्बलता, कमजोरियां, व्याधियां अङ्ग प्रत्यङ्गों की छोटाई मोटाई, सामाजिक परिस्थितियां, निर्धनता, देश की कमजोरियां सब मानसिक दासत्व की अभिवृद्धि किया करते हैं। भारत में मानसिक दासत्व का कारण अन्धकार मय वातावरण, तथा पाशविक वृत्तियों का अनाचार है। समय समय पर देश में होने वाले आन्दोलनों से मानसिक दासत्व में भी न्यूनता या अभिवृद्धि का क्रम चला करता है।

मानसिक दासत्व तथा धर्म—वर्त्तमान रूप में व्यवहृत हमारा धर्म मानसिक दासता का मित्र बना हुआ है। मनुष्य को मन प्रत्येक तत्त्व को समझने, मनन करने के लिए प्रदान किया गया है। वह सोच समझ कर प्रत्येक वस्तु ग्रहण करें; यों ही प्रत्येक तत्त्व को अन्धों की तरह ग्रहण न करे-यही इष्ट है। धर्म के आधुनिक रूप ने मानव मन को अत्यन्त संकुचित डरपोक बना दिया है। किताब, कलमा, जादू टोना, तीर्थ न जाने कितनी आफ़तें मानव मन पर सवार हैं। वह धार्मिक शृंखलाओं के कारण इधर से उधर टस से मस नहीं हो पाता। हजार आदमी उसके ऊपर उँगलियां उठाने को प्रस्तुत हैं। अतः बेचारे को अन्य व्यक्तियों का अनुकरण करना होता है। अनुकरण अबोध के लिए उपयुक्त हो सकता है किन्तु विवेकशील को उस जंजीर में बांधने से उसके मनः क्षेत्र में प्रबल उत्तेजना उत्पन्न होती है। इस प्रकार मन की गुलामी उत्पन्नहोती है।

जब मन उत्तम तथा निकृष्ट में विवेक न कर ने "[illegible]" [illegible]

पूर्वक निज कर्म करना चाहिए। यदि मनुष्य का मन स्वतन्त्र रूप से विवेक की शक्ति नहीं रखता, तो वह किसी अन्य शक्तिके वशमें अवश्य रहेगा। स्वयं जब मन को अपनी इच्छा शक्ति पर प्रभुत्व नहीं तो उस पर किसी विजातीय शक्ति का प्रभुत्व अवश्य रहेगा।

मन को परिपक्व होने का अवसर दीजिए—

यदि एक छोटे पौधे को एक शीशी में बन्द करदें और केवल ऊपर से खुला रहे,तो वह क्रमशः ऊपर ही को बढ़ेगा। उसे इधर-उधर फैलने की गुञ्जायश नहीं है। उसे आपने सङ्कीर्ण वातावरण में रख दिया है। इसी प्रकार यदि आप कूप मण्डूक बने रहेंगे, तो मन विकसित न हो सकेगा। वह एकाङ्गी रहेगा तथा उसमें सहृदयता, दयालुता, सत्यवादिता, निर्भीकता या निर्णय शक्ति का विकास न हो सकेगा। मन को छोटे दायरे में बन्द रखने से मनुष्य स[illegible] वैभव होते हुए भी अन्तर्वेदना से पीड़ित रहता है। उसमें आत्म सम्मान का प्रादुर्भाव नहीं होता।

मन को स्वाधीनता दीजिए। उसे चारों ओ[illegible] फैलने का अवसर दीजिए। मानसिक स्वतंत्रता से ही मनुष्य में दैवी गुणों का प्रादुर्भाव होता है। मन को स्वच्छन्दता पूर्वक विचारने की, मनन करने की स्वतन्त्रता दीजिएतो वह आपका सच्चा मित्र-सलाहकार बन जायगा। वह निकृष्ट भोगेच्छाओं में परितृप्त न होगा। वह अन्य व्यक्तियों की कृपा [illegible] आश्रित न रहेगा। मानसिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ही मनुष्य का संसार के प्रति दृष्टिकोण बदल जात[illegible] है। मानसिक स्वच्छन्दता के बिना मनुष्य प्रसन्नचि[illegible] नहीं रह सकता।

कल्पना कीजिए। आपको बात बात पर व्यक्तियों के इशारों पर नर्तन करना पड़ता है। आप तनिक सी मौलिकता प्रकट करने का [illegible] करते हैं कि आपको तीखी डांट पड़ती है। [illegible] स्थिति में मन परिपक्व नहीं होता। उसकी [illegible] मौलिकता नष्ट भ्रष्ट होजाती है। वह मन मनुष्[illegible] [illegible] उन्नति में बाधक बन जाता है।

प्रोफेसर गेट्स ने सिद्ध किया है कि जिन व्यक्तियों को तनिक तनिक से अवसर पर डराया धमकाया या ताड़ना दी जाती है उनकी सर्जन शक्ति विलुप्त हो जाती है। आत्म सम्मान खो जाता है। ऐसी दासता आध्यात्मिक पतन की सूचक है। ऐसी भयङ्कर स्थिति के कारण अनेक मनुष्यों की प्रगति उन्नति रुक जाती है। व्यवहारिक जगत में जो [illegible]क्ति सदा दूसरों का मुँह निहारा करते हैं, वे [illegible]माज के भार-स्वरूप हैं।

मन को उत्तम बनाने के साधन—मानसिक परिपुष्टि का मुख्य साधन है – शिक्षा। जिस मस्तिष्क को शिक्षा नहीं मिलती वह थोड़ा बहुत अनुभव (Experience) से बढ़कर रुक जाता है। शिक्षा ऐसी हो जिससे मन की सभी शक्तियों—तर्क-शक्ति, तुलना-शक्ति, स्मरण-शक्ति, लेखन-शक्ति, कल्पना-शक्ति का थोड़ा बहुत विकास हो सके। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि हम अपनी इच्छानुसार इन सभी शक्तियों को बढ़ा सकते हैं। आवश्यकता है केवल ठीक प्रकार की शिक्षा की। शिक्षा ऐसी मिले कि मनुष्य का विकास उत्तरोत्तर होता रहे, वह रूढ़ियों का गुलाम न बन जावे। अन्यथा मानसिक दासता का फल भयङ्कर होगा।

दूसरा साधन है अनुकूल सङ्गति तथा परिस्थितियां। जिन परिस्थितियों में मनुष्य निवास करता है प्रायः वे ही मानसिक शक्तियां उसमें जाग्रत होती हैं। जिस मनुष्य के परिवार में कवि अधिक मात्रा में होते हैं, वह प्रायः कवि होता है। हरे पत्तों में निवास करने वाला कीड़ा हरित वर्ण का ही हो जाता है। अतः पुस्तकों की संगति में रहिए, विद्वानों से तर्क कीजिए; शङ्काओं का समाधान कीजिए।

तीसरा साधन है उपयुक्त मानसिक व्यायाम। [illegible]स प्रकार नियमित व्यायाम से हमारा शरीर विकसित होता है उसी प्रकार मानसिक व्यायाम (अभ्यास) द्वारा मन में भिन्न भिन्न शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। एकाग्रता का अभ्यास अपूर्व शक्ति प्रदान करता है। खेद है कि अनेक व्यक्ति नि[illegible] जीवन में एकाग्रता को वह महत्त्व प्रदान नहीं करते जो वास्तव में उन्हें करना चाहिए। एकाग्रतासे कार्य शक्ति बहुत बढ़ जाती है। यदि दृढ़ एकाग्रता रख[illegible] वाले व्यक्ति से तुम्हारा साक्षात्कार हो तो तुम्[illegible] अनुभव होगा कि वह पर्वत सदृश्य अचल हो[illegible] कार्य करता है। तुम उसे छेड़ो चाहे कु[illegible] करो किन्तु वह विचलित न हो सकेगा। इसी क[illegible] नाम दृढ़ एकाग्रता है। इसी से मन वशमें आसकत[illegible] है। मन अभ्यास का दास है। जैसे २ आपक[illegible] अभ्यास बढ़ेगा वैसे वैसे एकाग्रता की वृद्धि होगी। चौथा साधन है— अन्तर्दृष्टि। तुम समाज की रू[illegible] तथा बिरादरी के गुलाम न बनो। धर्म की रूढ़ि औ[illegible] धर्माचार्यों की लकीरों से पस्त हिम्मत न हो जा[illegible] वरन् अपनी मौलिकता की वृद्धि करो। न कोई मुल्ला न कोई पण्डित, न राज्य का फैलाया हुआ कुसंस्कार का जाल, तुम्हें दैवी उच्च भूमिका से कोई नहीं हटा सकता। यदि तुम मन की उच्च भूमिका में निवास करते रहोगे, तो तुम में यथार्थ बल प्रकट होगा।

विश्व में सब से अधिक महान् कार्य मन क[illegible] शक्तियों को बढ़ाना है। तुम्हारा अभ्यन्तर प्रदेश अनन्त और अपार है। अभ्यास तथा मनन द्वार[illegible] तुम अपनी नैसर्गिक शक्ति को प्राप्त कर सकते हो।

स्मरण रहे, तुम्हें अपना विकास करना है अल्पज्ञ, निःसत्त्व नहीं बने रहना है। तुम्हें उचित [illegible] कि निज सामर्थ्यों में विश्वास एवं श्रद्धा रखना सीखो। सदा सर्वदा आन्तरिक मन की भावनाओं के प्रति लक्ष दिये रहो। यह मत सोचो कि हमें तो इतना ही विकसित होना है, वरन् यह सोचो कि अब अभिवृद्धि का वास्तविक समय आया [illegible] अपनी विशालता, अतुल सामर्थ्य [illegible] करो। मानसिक दासता से छुटकारा [illegible] संसारमें विजयी योद्धाकी तरह [illegible]

धर्म और विज्ञान में विरोध नहीं

[श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज]

साइन्स और आस्तिकवाद की शत्रुता बहुत पुरानी नहीं है । प्राचीन आस्तिकवादी सृष्टि के नियमों का अवलोकन करके ही ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करते थे। परन्तु कुछ दिनों पश्चात् साइन्स और आस्तिकवाद में झगड़ा होगया। आस्तिकवादी समझने लगे कि ईश्वर का सृष्टि-रचना से क्या सम्बन्ध, उन्होंने मनमाने गुण ईश्वर में अरोपित करने शुरू कर दिये। ज्ञान मार्ग का अन्त हुआ और भक्ति मार्ग चला। भक्ति मार्ग ने अन्धविश्वास को बढ़ाया, इसीके साथ साइन्सवाद का ह्रास हुआ। इसके बाद साइन्सका पुनरुत्थान पश्चिम में हुआ। उस समय वहां आस्तिकवाद तो न था, परन्तु उसीके नाम पर अन्धविश्वास अवश्य फैला था । प्राचीन भारतवासी तो ज्ञानको ईश्वर प्राप्ति तथा मोक्ष का साधन मानते थे । नवीन काल में साइंस या विज्ञान को अनीश्वरता का एक चिन्ह समझने लगे।

साइंस और धर्म का झगड़ा युरोप से आरम्भ हुआ। उस समय योरुप में ईसाई धर्म का प्रावल्य था। ईसाई धर्म का अर्थ ही यह था कि पोप जो कुछ कहदे वही सत्य है । मनुष्य को आंख कान खोलकर चलने की वहाँ आज्ञा न थी। परन्तु जब कुछ लोगों ने आँख कान खोलकर सृष्टि का अवलोकन करना आरम्भ कर दिया तो धर्माध्यक्षोंने उनका विरोध किया । इसलिये गैलिलियो आदि स्वतन्त्र विचारकों को अन्वेषकों को कड़ी यन्त्रणाएँ दी गई। यह लड़ाई का आरम्भ था और इस वैमनस्यने जो पहला प्रभाव साइंस वेताओं के हृदय पर डाला, वह यह था कि हमारे ऊपर अत्याचारों का कारण आस्तिकवाद है। ज्यों ज्यों आस्तिकवादी ईश्वर के निराधार सिंहासन को ाजे से बचाने का यत्न कर रहे थे, त्यों त्यों साइंसवालों को आस्तिकवाद की निर्मूलता का विश्वास होता जाता था । इसमें भूल दोनों ओर से थी, परन्तु अधिक भूल धर्माध्यक्षों की ओर से थी। यदि धर्माध्यक्ष समझते कि साइंस वेत्ता केवल उन नियमों के अन्वेषण में लगे हुए हैं जिन नियमों की आस्तिकवादी पूजा किया करते हैं तो साइंस,धर्म से विरुद्ध न होकर सच्चे आस्तिकवाद की महत्ता दिखलाने में संलग्न होती। साइंसवालों को यह सोचना चाहिये था कि आस्तिकवाद केवल उन्हीं सिद्धान्तों का नाम नहीं है जो अन्धविश्वासियों ने प्रचलित कर रक्खे हैं । परन्तु जब आस्तिकवाद के नाम पर साइंसवालों के प्राण लिये जाने लगे और उनको देखने-सुनने और सोचने की आज्ञा न रही तो मरता क्या न करता। उन्होंने खुले मैदान में लड़ना आरम्भ कर दिया। यह युद्ध यहाँ तक बढ़ा कि साइंसवालों को आस्तिकवाद नाम तक से भी घृणा हो गई और वह घृणा अब तक चली आ रही है। यह बात नहीं है कि साइंसवाले सभी उसी पुराने विचार के हैं। साइंस की वर्तमान उन्नतिने साइंसवालों को भी इस बात का निश्चय करा दिया है कि चाहे विशेष प्रकार का आस्तिकवाद झूठा और निर्मूल हो, तथापि साइंसके नियमों के लिये किसी न किसी नियन्ता की आवश्यकता है। वस्तुतः विचार किया जाय तो साइंस और आस्तिकवाद एक दूसरे से विरुद्ध नहीं हैं। साइंस क्या है ? सृष्टि की घटनाओं का भली भांति निरीक्षण करना कि यह अनियमित नहीं हैं फिर उन नियमों का वर्गी करण करना — इसी का नाम साइंस है। साइन्स को जैसे जैसे उन्नति होती जाती है, वैसे ही संसार के वर्तमान नियमों का उसे पता लगता जाता है । इन निय का पता लगाकर इसके आगे न बढ़ना और मान लेना कि यह नियम स्वयं ही बिना किसी बु तथा इच्छा या शक्ति के काम करते रहते हैं, साइंस के मौलिक नियमों का स्वयं खण्डन करना है। जो साइंसवेत्ता अन्वेषण आरम्भ करता है

कि साइंस की घटनायें एक दूसरे से असम्बद्ध नहीं है. वरन् वे नियम रूपी सूत्रों में पिरोई हुई हैं। यदि ऐसा न हो तो साइंस वालों को आगे बढ़ने का साहस भी न होता, साइंस एक पग भी उन्नति न कर सकता। जैसे एक साइंसवेत्ताने एक शीशी भर जलका विश्लेषण करके यह पता लगाया कि शीशी उतना जल हाइड्रोजन और आक्सिजन से लकर बना है। अब उनको यह भी विश्वास है जो नियम इस शीशी भर पानी में काम करता वही संसार के अन्य जलों में कार्य कर रहा है। इस प्रकार समस्त साइंसका मूलाधार सिद्धान्त यह है कि संसार की सारी घटनायें असम्बद्ध नहीं किन्तु नियमबद्ध है। यह सिद्धान्त उस समय भी था, जब साइंस छोटा सा बच्चा थी। अब भी है ब कि साइंस इतनी उन्नति कर गयी है। आगे भी रहेगा। साइंस केवल इतना ही नहीं मानती कि संसार की घटनायें नियमबद्ध हैं। किंतु वह इससे आगे चल कर यह मानती है कि यह नियम भी स्वयं एक और सूक्ष्म नियम सूक्ष्मतर नियमों के साथ बंधे हुए हैं। जब साइंसने इतना मान लिया तो फिर उन नियमों के लिये चेतना अर्थात् ज्ञान और इच्छा शक्ति की आवश्यक्ता न समझना साइंसवेत्ताओं को शोभा नहीं देता। इसी लिये बड़े साइंसवेत्ता आगे किसी चेतन शक्ति पर ----स करते हैं या केवल यह कह कर संतुष्ट हो ैं कि हमारी गति केवल इन्हीं नियमों तक अभौतिक संसार इसकी सीमासे बाहर है। यह उत्तर भी यह प्रकट करता है कि वे क नहीं हैं। केवल आस्तिकवाद के सिद्धान्तों ाभिज्ञ हैं।

दिक सिद्धान्त साइंस (विज्ञान) और धर्म को स्थान देता है। साइंस भौतिक जगत् का ाण करता है और धर्म अभौतिक सत्ता का ान कराता है।

———

मित्रता किससे करनी चाहिये?

(लेखिका—राजकुमारी 'ललन' मैनपुरी राज)

अक्सर देखने में आता है कि किसी किसी व्यक्ति को जीवन भर खोज करने पर भी सच्चे मित्र की प्राप्ति नहीं होती। वह आजीवन मित्रता तोड़ता और जोड़ता रहता है अथवा निराश होकर सोच लेता है—सच्ची मित्रता एक ऐसा मीठा स्वप्न है जिसे सभी आमरण देखते हैं पर कभी भी पूर्ण नहीं होता। किसी विषय पर जब बुद्धि निर्णय करने में असमर्थ हो जाती है। तब अपने श्रद्धाभाजन व्यक्तियोंसे राय लेते हैं। आइये! हम भी जगत्वन्द्य तुलसीदास जी की सम्मति लें। सुनिये, तो वे इस कठिन समस्या का क्या उत्तर देते हैं।

"इष्ट मिले अरु मन मिले, मिले भजन की रीति।
तुलसी ऐसे जीव सन, हठि करि कीजे प्रीति॥"

अर्थ जरा व्यापक रूप में लीजिये—इष्ट (जीवन का लक्ष्य अर्थात् जिसे पाने की आपको सर्वाधिक चाह है) मिले, अरु मन मिले (स्वभावतः ही आपके, उसके प्रति सद्भाव हों और उसके आपके प्रति दोनों के हृदय एक दूसरे के प्रति निस्वार्थ भाव से आकर्षित हों) मिले भजन की रीति (चिन्तन करने की रीति भी दोनों को मिलती जुलती हो) ये है मित्रता का निष्कण्टक राजमार्ग। ऐसी मैत्री दिन २ बढ़ती है टूटने का डर ही नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि इन तीनों गुणों के बिना मैत्री हो ही नहीं सकती, अगर अपने पास सहिष्णुता है, धैर्य है, और हैं विमुख और रुष्ट मित्र के लिए भी हार्दिक सद्भाव और शुभ कामनाऐं तो एक दिन वह आपके इस सच्चे प्रेम का मूल्य समझेगा और हृदय से पश्चाताप दग्ध होकर आपसे क्षमा प्रार्थना करेगा। संसार की कोई भी शक्ति आपकी मित्रता नष्ट नहीं कर सकती क्योंकि सत्य और न्यायपूर्ण पथ पर जगत्पिता सर्व शक्ति केन्द्र जगत्नियन्ता सदैव ही सहायक है।

सूर्य स्नान की विधि ।

[डा० श्री० जटाशंकर नान्दी]

सूर्य की किरणों में रोगों को दूर करने की इतनी अधिक शक्ति है कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। उनसे त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं और शरीर में संचित दूषित पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। अशुद्ध रक्त और रोग नष्ट हुए बिना नहीं रहते।

सूर्य-स्नान करते समय निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—

(१) सूर्य-स्नान करते समय सिर को भीगे रुमाल अथवा हरे पत्तों से ढक लेना चाहिए।

(२) सूर्य-स्नान का सर्वोत्तम समय सूर्योदयकाल है। उस समय यदि स्नान का सुयोग न मिले तो फिर सूर्यास्तकाल। तेज धूप में न बैठें। इसके लिए प्रातःकाल और सायंकाल की हलकी किरणें ही उत्तम होती हैं।

(३) धूप-स्नान का आरम्भ सावधानी से करें। पहले दिन १५ मिनिट स्नान करें। फिर रोज पांच मिनट बढ़ाते जायँ। परन्तु एक घंटे से अधिक नहीं।

(४) जितनी देर स्नान करना हो उसके चार भाग करके पीठ के बल, पेट के बल, दाहिनी करवट और बायीं करवट से धूप लें, जिससे सारे शरीर पर धूप लग सके।

(५) सूर्य-स्नान करते समय शरीर पर लंगोट छोड़कर कोई वस्त्र न रखें।

(६) खुले स्थान में, जहाँ जोर की हवा न आती हो सूर्य-स्नान करे।

(७) भोजन करने के एक घंटे पहले और दो घंटे बाद तक सूर्यस्नान न करें।

(८) सूर्य-स्नान करने के उपरान्त ठंडे पानी में भीगे तौलिये से शरीर का प्रत्येक अंग खूब रगड़ना।

स्नान के बाद यदि शरीर में फुर्ती, उत्साह आता जान पड़े तो ठीक है। यदि सिर में दर्द तथा अन्य किसी प्रकार का कष्ट जान पड़े तो सूर्य-स्नान का समय कुछ घटा दे।

(१०) सदा नियमित रूप से स्नान करे। बीच २ में नागा करने से लाभ नहीं होता। स्नान का पूरा लाभ रोज नियमित रूप से करने से ही प्राप्त होता है। बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सभी को सूर्य स्नान से लाभ उठाना चाहिए।

बेटिब, डब्लू, आर, लुकस, जानसन रोलियर, लुइस, रडोक, टाइरल आदि अनेक डॉक्टरों और अनेक वैद्यों ने सूर्य-स्नान की बहुत-बहुत प्रशंसा की है। महात्मा गांधी ने कहा है कि प्लेग के विष का सामना करने और हमारे रक्त को शुद्ध करने के लिए रोज सबेरे सूर्य-स्नान करना चाहिए। विदेशों में इस विषय पर नित्य नये ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं और हमारे तो पुरातनकाल से ही प्रातः साय और मध्याह्न संध्या का विधान है जिसका अर्थ है खुले बदन पर सूर्य की बलदायक और आरोग्य प्रद किरणें पड़ने देना। बिलकुल मुफ्त मिलने वाली सूर्य-किरणों का लाभ उठाकर हमें अपना स्वास्थ्य सुधारने में चूकना नहीं चाहिए।

मनुष्यता सीखने की सबसे बड़ी पाठशाला अपना घर है। स्नेह और त्याग, क्षमा और तत्परता की भावनाओं के विकास के जितने सुन्दर अवसर घर में मिलते हैं, उतने और कहीं नहीं मिल सकते। हमारी सबसे पहली धर्म शिक्षा यह होनी चाहिए कि अपने आचरण से अपने घर को स्वर्ग बनाएं।

× × ×

'जीवन' एक प्रश्न है और मृत्यु' उसका

× ×

अन्याय वह चनगारी है जिसे लोग अपने अंचल में रखते हैं और उस द्वारा जल बल कर भस्म होजाते हैं।

× ×

मैं अन्धा हूं; पर-
आपको तो दीखता है।

(लेखक—पं० पीतमराम जी 'सूर' ज्योतिर्विद)

मैं जन्म से अन्धा हूं। माता के उदर से इस धरती माता पर जब से मैं आया हूं तब से मैंने यह नहीं जाना कि इस दुनियां की वस्तुओं का रङ्ग-रूप आकार प्रकार कैसा है? आप लोग जो इस लेख को पढ़ रहे होंगे आंखों वाले हैं, इसलिए आप लोगों के लिए यह अनुभव करना कठिन है कि एक अन्धा आदमी कितना अपूर्ण होता है उसका आगे बढ़ने का मार्ग कितना संकुचित और कठिनाइयों से भरा हुआ होता है।

मेरे पिता जी बचपन में स्वर्ग सिधार गये थे। करुणामयी माता ने मुझे वैसे ही स्नेह से पाला जैसे कि कोई भावुक माता अपने आँखों वाले बालक को पालती है। जब कुछ बड़ा हुआ, लाठी के सहारे रास्ता टटोल के घर गांव से बाहर आने जाने में समर्थ हुआ तो मन में तरह तरह की आकांक्षाऐं उठने लगीं। कानों से दुनियां वालों की बातें सुनता था, लोग कैसा उन्नति शील, आनन्दमय, यशस्वी जीवन व्यतीत करते हैं परन्तु आह! मैं तो अन्धा हूं, मेरी उन्नति के सभी द्वार बन्द हैं। क्या कर सकता हूं? कैसे कर सकता हूं? सोचता और मन मसोस कर रह जाता।

आकाँक्षाओं ने मुझे चैन से न बैठने दिया। भरतपुर स्टेट का उभावलो गांव जिसमें मैं जन्मा हूं, बहुत छोटी अशिक्षित लोगों की बस्ती है, यहां विद्या का प्रचार नहीं है तो भी मैंने विद्या पढ़ने का आश्रय तलाश किया। पढ़ने वालों की बगल में बैठा बैठा ध्यानपूर्वक सुनता रहता, हिसाब, गणित, भूगोल. भाषा, व्याकरण आदि में सुन सुन कर ही मैंने अपना अनुभव बढ़ा लिया! रेत में उँगली से लिख कर अक्षर बनाना मैंने सीख लिया। आंखों से देख कर पढ़ नहीं सकता, इसके अतिरिक्त उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों से और किसी बात में कम नहीं रहा।

संस्कृत का मैंने अध्ययन किया। दूसरों मे पुस्तकें पढ़वाता और खुद उन्हें हृदयङ्गम करता। यह कार्य यों ही आसानी से नहीं हो गया। पितृ विहीन, धन हीन, असहाय अन्धे को छोटी सी देहात में रहते हुए यह सब कितनी कठिनाइयों से हो सका इस सबको आप अनुभव नहीं कर सकते। अभाव और कठिनाइयों से मैंने बीस वर्ष तक निरंतर युद्ध किया और विद्याध्यन के अपने कार्य को जारी रखा। धर्म शास्त्र और तत्पश्चात् ज्योतिष को मैंने पढ़ा। ज्योतिष का विषय बड़ा कठिन है. बड़े बारीक और लम्बे गणित उसमें करने पड़ते हैं। इन गणितों में आंखों वाले भी चूक जाते हैं, ऐसे कठिन विषय को मैंने विशेष दिलचस्पी के साथ अपनाया और ग्रहों के गतिचार की सूक्ष्म गणनाओं में विशिष्ठ निपुणता प्राप्त करली।

अब मैं इष्ट, जन्म पत्र, वर्ष फल आदि शुद्ध शास्त्रोक्त रीति से बनाता हूं। मेरा मस्तिष्क और क्लर्क की आंखें दोनों, मिला कर एक पूरा आदमी बनता है। इस प्रकार ज्योतिष संबन्धी कार्य से अपनी आजीविका बड़ी सुविधा पूर्वक चला लेता हूं, इस प्रदेश में अपनी योग्यता के कारण दूर दूर प्रसिद्ध हूं, अनेक पत्र पत्रिकाऐं पढ़वाता हूं, नित नई पुस्तकों से मानसिक भोजन प्राप्त करता हूं। प्रसन्न रहता हूं और आनन्द मय जीवन व्यतीत करता हूं।

मैं इस लेख के पाठकों से पूछता हूं कि मैं जन्मसे अंधा आदमी जब अपनी इच्छा और प्रयत्न के द्वारा इतना सब कर सकता हूं तो आप लोग जिनकी दोनों आँखें हैं और अनेक प्रकार के साधन प्राप्त हैं क्या अपने जीवन को उन्नतिशील नहीं बना सकते? अंधेकी अपेक्षा अनेक गुना पुरुषार्थ क्या आप लोग नहीं कर सकते? आँखें होते हुए भी यदि आप अभाव और अविद्या का हीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं तो यह आपके मनोबल और उद्योग की कमी का दोष है, जिसे सुधार लेना पूर्णतया आपके हाथ की बात है।

———

मानसिक दुर्बलताएँ ही—
शारीरिक दुर्बलताओंकाकारणहैं

(लेखिक—कुमारी कैलाश वर्मा)

मन उस पीलवान की तरह है जो शरीर रूपी हाथी को जिधर चाहे हाँकता है । देखने में शरीर कितना बड़ा है किन्तु हाथी की तरह यह मन के हाथ का खिलौना मात्र है । जिधर मन को इष्ट होगा उसी ओर शरीर की प्रगति होगी । प्रत्येक पल, प्रत्येक अवस्था में, प्रत्येक स्थिति में मन का ही प्रभुत्व है ।

कितने ही व्यक्ति शरीर को पुष्ट करते समय मानसिक परिपुष्टि की बात को बिल्कुल विस्मृत कर बैठते हैं । मन में यदि ईर्षा, लोभ, क्रोध, द्वन्द्व का राज्य है तो शरीर क्यों कर पूर्ण स्वस्थ हो सकता है । हमें प्रत्येक अवस्था में अपने मानसिक स्वर को उच्च बनाने का प्रयत्न करना अपेक्षित है ।

यदि हम निज अन्तरात्मा की शुद्धि का प्रयत्न करें, अपने मनः प्रदेश में विजातीय तत्त्वों का प्रवेश न होने दें, तथा सदैव शक्ति, शान्ति उन्नति के शुभ्र विचारों को हृदय मंदिर में प्रचुरता से आने दें तो सहज में ही पूर्ण निरोग जीवन का आनन्द लूट सकते हैं ।

एक लेखक महोदय लिखते हैं—"मैं चार वर्ष से व्यायाम कर रहा था । शारीरिक दुर्बलता तो थी ही, किन्तु मानसिक विचार भी स्थिर न था । यही कारण है कि मैं स्वयं अपने आप को व्यायाम करता हुआ भी दुर्बलता का अनुभव कर रहा था । जब मैंने मानसिक परिष्कार पर ध्यान दिया तब से निरोगी बन चुका हूँ और निज जीवन में एक विचित्र प्रकार का आनन्द प्राप्त कर रहा हूं ।"

उफ् ! आज हमारे पतन का मुख्य कारण पर दिन बढ़ती होती हुई मानसिक दुर्बलता है । यही हमारा कमजोर स्थल (Weakspot) है । आज के नवीन युग में हमें दुर्बल मन्तव्यों, दुर्बल भावनाओं, राग-द्वेषादि, अज्ञान अंधकार को समूल हटा कर निःसीम परमात्मा की ज्योति को प्रकट करना होगा । क्रोध, घृणा, अपमान को विस्मृत कर आत्मा के आनन्दमय प्रदेश में लीन होना होगा । वास्तविक शान्ति का प्रचुर भंडार तो हमारे अन्तर्प्रदेश में स्थित है । अपनी इन्द्रियों को सं मन को उन्नति के, परिपुष्टि के, प्रेम के, विचारों से भरना होगा तब ही हमारी नाड़ियों में स्वस्थ रक्त प्रवाहित हो सकेगा ।

हम ऊपरी हृदय से व्यायाम, ध्यान, तप, यज्ञ करते हैं, ब्रह्मचर्य एवं संयमी जीवन बिताने का अभिनय (Acting) कर रहे हैं किन्तु हमारे मन के कोने कोने में कलुषित वासनाएँ व्याप्त हैं । इस अभिनय में हम दूसरों को धोखा नहीं प्रत्युत स्वयं अपने आप को ही धोका दे रहे हैं । हृदय में निर्बलता भरी हुई है तो ऊपरी साधनों से क्या होना जाना है ।

यदि आप स्वस्थ होना चाहते हैं तो कार्य मानसिक स्वास्थ्य से प्रारम्भ कीजिए । वही आपकी मूल भित्ति है । जो रचनात्मक कार्य वहाँ से प्रारम्भ किया जायगा उसकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि निश्चित है ।

जीवन को पूर्ण बनाने वाली तीन बातें हैं (१) कठिन परिश्रम करने का उत्साह और अभ्यास (२) कर्तव्य धर्म में अटूट श्रद्धा और तत्परता (३) प्राणि मात्र की हित कामना और सेवा परायणता ।

× × ×

मनुष्य विवेकशील और न्याय परायण होने कारण मनुष्य है किन्तु प्रेम और उदारता भावनाओं को विकसित करके वह देवता भी सकता है ।

× × ×

मन की समता पर दृष्टि रखिए

(ले०-श्रीमती प्रीतमदेवी महेन्द्र, साहित्यरत्न)

प्रत्येक कार्य करते समय, किसी भी वस्तु को प्राप्त करते समय, दुःख में या सुख में एक तत्त्व पर सूक्ष्म दृष्टि रखिए और वह उत्कृष्ट तत्त्व है मन की समता। समस्त प्रकृति तथा नियति के प्रायः प्रत्येक कार्य में सम-स्वरता (Harmony) तत्त्व कार्य कर रहा है। यह तुम्हारे मानसिक-का एक विशिष्ट गुण है।

प्रकृति में कहीं भी व्यवधान नहीं, रुकावट नहीं, बंध नहीं, स्थिरता आदि कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार मन में, उसके सूक्ष्म पुर्जों में, पूर्ण समता होना अनिवार्य है। जब जब तुम्हारे मन में क्षोभ-उत्पन्न होता है, मन के तन्तुओं में रुकावट उत्पन्न हो जाती है। सब पुर्जे ऊटपटांग हो उठते हैं। ऐसी उत्तेजना में किया गया कोई कार्य सफल नहीं होता।

संसारिक झगड़े, नित्य प्रति की इच्छाएँ, वासनाएँ अन्तःकरण में उत्पन्न होकर क्षणभर में मनः प्रदेश में भयंकर उत्क्रान्ति उत्पन्न कर देते हैं। हमारा चंचल मन जगत् के परिवर्तन के साथ भटकने लगता है। संशय, भ्रम, भय के विषय जाल में मन फँस जाता है और हमें दीन दुनियां कहीं का नहीं छोड़ता।

हजारों व्यक्ति आज मन की समस्वरता को खो देने के कारण तिल का ताड़ बना रहे हैं। भूल तो स्वयं करते हैं तथा दोष दूसरे के सिर मढ़ते हैं।

यदि तुम कुछ समय के लिए सांसारिक झगड़ों निवृत्त होकर शान्ति से अपने मन की परीक्षा करोगे तो तुम्हें ज्ञात होगा कि तुम प्रकृति में बहने वाली महान् समस्वरता (Harmony) से मिल कर कार्य कर रहे हो। आजकल यूरोप के अनेक सफल व्यक्ति दिन में काम धंधे से समय निकाल कर अपनी सफलता पर मन को एकाग्र करते हैं। अस्त व्यस्त हुई शक्तियों का संग्रह करने से मनः समता की वृद्धि होती है।

प्रसिद्ध कवि वाल्टर स्कौट की अद्भुत मनः समता देखिए। स्काट एक बार ऋण के बोझ से बिल्कुल दब गया था। उसके मित्रों ने उसकी सहायता करनी चाही पर उसने यह बात स्वीकार नहीं की और स्वयं अपनी प्रतिभा ही का आश्रय लेकर लाखों रुपये का ऋण उतारा। विपद् में समस्वरता अपूर्व बल है।

प्रतिदिन नियत समय पर किसी एकान्त कमरे में बैठो। ऐसी व्यवस्था रहे कि जिससे तुम्हारे इस समय में तनिक भी बाधा उपस्थित न हो। फिर शान्त मन से आराम से बैठ जाओ शरीर को निष्क्रिय कर लो। शीघ्र ही कुछ क्षण के लिए मन से क्रोध, ईर्षा, उद्वेग, इत्यादि उत्तेजनाओं को मन से बाहिर्गत करो और अपनी शक्तियों को केन्द्रित करने का ध्यान करो। शान्तिपूर्वक मानसिक गंभीरता का अनुभव करो। फिर सोचो कि—"मैं प्रकृति में बहने वाली महान् समाधानी (Harmony) की धारा का एक बिन्दु हूं। उसी अखंड आत्मा का एक भाग हूं। उससे च्युत नहीं हूं। वही प्राण, वही आत्मा वही श्वास मुझमें है।" ऐसे एकता के दिव्य विचारों में तुम्हें ऐसा अनुभव होगा कि तुम इस शान्त, मधुर और स्थिरता की दशा में प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर रहे हो—एक हो रहे हो। इस तादात्म्य (Unity) की अवस्था में तुम्हें ऐसा अनुभव होगा कि जैसे तुम्हारे अंग प्रत्यंग में नया बल, नया उत्साह एक नई शक्ति का संचार हो रहा है।

संसार की जितनी भी शक्तियाँ हैं वह सब उस मनुष्य की रक्षा एवं सहायता करने को प्रस्तुत हैं जिसने समाधानी (Harmony) के तत्त्व को ग्रहण किया है और जो अपनी आत्मा का सर्वाधिकार स्वामी है।

पायरिया रोग-उसका कारण और निवारण।

(ले०—डा. बिट्ठलदास मोदी, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर)

पायरिया आज एक बहुत ही प्रचलित रोग है। स्टेशन, गाड़ी, बाजार जहां कहीं भी देखिये इस रोग की दवा बिकती दिखाई देगी। आप जरा भी ध्यान दें, तो इसकी दवा बेचने वाला इस रोग के सारे लक्षण गिना जायगा—"अगर सबेरे उठने पर मुँह खारा लगता हो, मुँह में बदबू आती हो, पानी दांतों में लगता हो मसूड़े फूल गये हों, उनसे पीव निकलती हो, दांत हिलते हों तो यह मञ्जन मिनटों में आराम करता है।" रोगी लक्षणों को सुनते हैं. अपने कष्टों से मिलाते हैं और जब लक्षण मिल रह हैं तो दवाई ठीक होगी यह समझ कर अपनी गांठ कटाते हैं।

यह तो हाल है उनका जो दो चार पैसे खर्च कर सकते हैं। जो दो चार रुपये खर्च कर सकते हैं वे बड़े केमिस्ट की दूकान पर जाते हैं और सुंदर पैकिङ्ग बन्द गला सड़ा पेस्ट-पाउडर खुशी खुशी खरीद लाते हैं। ऊपर से रुपये आठ आने का (अब दो रुपये का) ब्रुश भी खरीदना होता है। क्रीम-सी सुन्दर लगने वाली ब्रुश जल्द ही गन्दगी का घर बन जाती है और यदि दांत रोगी न भी हों तो करके छोड़ती है।

यह रोग आज की सभ्यता की देन है। ज्यों ज्यों हमारा आकर्षण डिब्बों में बन्द खाद्य, सफेद चीनी, सफेद मैदा, पालिश वाले चावलों की ओर बढ़ता जारहा है त्यों त्यों इस रोग से आक्रांत लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है।

भोजन का खास कारण—शरीर जिन तत्वों से बना है उनमें बहुत से क्षार भी हैं। वे हमारे भोजन में होने ही चाहिये। इन क्षारों की खान हैं चोकरदार आटा, कन समेत चावल, भूसी समेत दाल, कच्चा दूध और सभी ताजे फल एवं हरी कच्ची तरकारियां। यदि इनका समुचित व्यवहार किया यह रोग न हो।

कैलशियम की कमी—लोग अक्सर कहा क[illegible] हैं कि चीनी खाने से दांत खराब हो जाते हैं। [illegible] बहुत अंश में सही है। गन्ने के रस अथवा गुड़ जब चीनी बना दिया जाता है तब उसमें कैलशिय[म] का अंश नहीं रह जाता और चीनी कैलशियम साथ के बिना पचती नहीं। अतः चीनी के पाच[न] के लिये कैलशियम हड्डियों से खिंच कर आता और हड्डियों को कमजोर बना देता है। इसक[ा] प्रभाव शरीर के अंदर की हड्डियों के पूरे ढांचे प[र] पड़ता है। पर दाँत बाहर होने के कारण उसक[ा] प्रभाव उन पर प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

अतः दांत के रोग खोने हैं तो सबसे पहि[ले] भोजन में कैलशियम की मात्रा समुचित कर[नी] चाहिये। एक समय के भोजन में दस ग्रेन कैलशिय[म] की जरूरत होती है। यह दस ग्रेन कैलशियम साधा[र]ण तथा खाये जाने वाले खाद्य पदार्थ चोकर [illegible] आटे की रोटी, छंटे चावल, केले मूँगफली नारि[यल] हरी मटर आदि में करीब ढाई सेर में मिलता है औ[र] बादाम, अंजीर, खजूर में करीब एक सेर में औ[र] फूल गोभी, टमाटर, लौकी, गाजर खीरा, पालक [में] आधा सेर में दस ग्रेन कैलशियम मिल जाता [है] और वही दस ग्रेन कैलशियम नौ छटाँक दूध, सात नारङ्गियों तथा पौन छटांक तिल में मिल जाता है।

दाँतों के रोगी का इस तालिका से लाभ उठाकर अपने भोजन में कैलशियम प्रधान भोजन की मात्र[ा] अधिक करने की ओर ध्यान देना चाहिये।

कसरत आवश्यक—और अंगों की तरह दांतो की कसरत भी आवश्यक है। वह उन्हें हलुआ-पू[ड़ी] खाने से नहीं वरन सूखी रोटी, कच्ची तरकारियां कड़े फल चबाने से ही मिलती है। अगर दिन किसी वक्त मुट्ठीभर भिगोया हुआ गेहूं अंकुरित क[र] लिया जाय तो और भी लाभ होगा। अंकुरित गे[हूं] में विटामिन "ई" भी पैदा होजाता है जो बाँझपन नपुंसकता, जच्चा का दूध कम होना, गर्भपात होत[े] रहना तथा जख्म जल्दी न भरना आदि की मानी

दवा है। गेहूँ का प्रयोग कब्ज तोड़ने की भी एक अचूक औषधि है।

दांतों की तकलीफ के साथ साथ जिनके मसूड़ों में भी तकलीफ रहती हो वे अपने भोजन में विटामिन 'सी' प्रधान खाद्य के व्यवहार का भी ध्यान रखें। विटामिन सी' शन्तरा, नीबू, टमाटर पात गोभी, प्याज, लहसुन, अनन्नास और अंगूर में अधिकता से होता है। मसूड़ों को कसरत होनी चाहिये। इसके लिए उन्हें दातुन करने के बाद अङ्गुली की पोर के सहारे बाहर भीतर हलके हलके रगड़ना चाहिये।

विशेष प्रयोग—जिनका रोग बढ़ गया है उन्हें अपने मसूड़ों पर दस पन्द्रह मिनट तक भाप भी नित्य कुछ दिनों तक लगानी चाहिये। एक लोटे में थोड़ा पानी डालकर आग पर चढ़ा दीजिये, भाप निकलने लगे तो लोटे के मुँह पर एक चिलम उलटी रख दीजिए। चिलम की नलो से भाप निकलने पर इच्छित स्थान पर भाप मजे में ली जा सकती है। भाप लेने के बीच में दो तीन बार ठण्डे पानी का एक दो कुल्ला भी करना चाहिए। यदि चेहरे पर भी भाप लगे तो परवाह न कीजिए। चेहरे पर भाप लगने के बाद सरसों कातेल, अथवा गिरी का तेल और नीबू का रस मिलाकर रात को लगाने से त्वचा पर वह रंगत आती है जिसे लाने की शक्ति किसी क्रीम, पाउडर, पोमेड या लोशन में नहीं है।

दो बात दाँतों की सफाई के बारे में भी जानिये। दांतों को रोज सबेरे उठने पर और सोने के पहिले नीम बबूल या किसी चीज के दातुन से अच्छी तरह साफ कीजिये। रात को सोते समय दातुन करना सबेरे दातुन करने से ज्यादा आवश्यक है। दांतों में फँसी चीज़ दिन को मुँह खुला रहने से तो कम सड़ती है, पर रात को जब मुँह बन्द हो जाता है तो उसे बन्द जगह में सड़ने का अधिक मौका मिलता है। दांतों को कभी सींक, नाखून या सुई से न खोदिए। जब कभी साफ करने की ज़रूरत मालूम पड़े तो एक छोटा सा रेशम का डोरा लेकर उसे साफ कर लीजिये। दाँतों में कोई भी बाज़ारू दवा लगा कर उन्हें निकम्मा न बनाइये। दवा लगानी हो सेंधा नमक मिलाकर सरसों का तेल अथवा नीबू का रस लगाना काफी होगा।

भोजन के बाद मूली, गाजर, खीरा, ककड़ी, सेब अमरूद सी कोई कड़ी चीज़ खाना न भूलिये। इनको चबाकर खाने से दांत साफ होंगे। फल और तरकारियों का क्षार दांतों को साफ करता है। इनका कोई अंश दांतों में रह भी जाय तो उतनी जल्दी नहीं सड़ता जितनी पक्की चीज़ का।

इन्हीं नियमों पर चलाकर मैंने कितने ही दांतों के रोगियों की अपने आप स्वस्थ होने में सहायता दी है। आप इन्हें आजमाइये और फिर दाँत की शिकायत करने की आपकी आदत छूट जायगी।

———

सूचनाएँ।

(१) विगत दो अङ्कों में मनः शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित डा० रामचरणजी महेन्द्र के 'महान जागरण' शीर्षक लेख निकलते हैं। यह लेखमाला एक वर्ष में कहीं समाप्त हो पाती. पाठकों को यह अमूल्य सामिग्री जल्दी ही मिल जाय यह सोच कर उसे पुस्तकाकार छपा दिया है। उसका नाम "महान जागरण" और मू० ।≈) है

(२) सन् १९४४ के अंत और सन् १९४५ के आरम्भ में श्री. मंत्र योगी के गायत्री सम्बन्धी कुछ लेख निकले थे, उन लेखों के अतिरिक्त और भी अनेक आवश्यक विषयों का समावेश करके "गायत्री की चमत्कारी साधना" शीर्षक पुस्तक छपा दी गई है कीमत ।≈) आना है।

—मैनेजर "अखण्ड ज्योति", मथुरा

आपका आध्यात्मिक गुरु कौन है?

(लेखक—श्रीयुत् महेश वर्मा "धुरंधर")

प्रायः हम सब ही किसी महापुरुष को अपना आदर्श मानते हैं। अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के अनुकूल ही हम अपने हीरो के प्रति आकर्षित होते हैं और उसी को अपना पथ-प्रदर्शक मानते हैं। पूजा में आप अपनी रुचि के अनुकूल ही देवता चुनते हैं। जो गुण आप में हैं उनका विकास बिना उपयुक्त पथ-प्रदर्शक के नहीं हो सकता। एकलव्य को गुरु द्रोणाचार्य की मूर्ति से अद्भुत स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्राप्त हुई थी। कोई भी महापुरुष आपको सत्प्रेरणा प्रदान कर सकता है। अपनी रुचि के अनुकूल जिस महापुरुष में—चाहे वह आपके देश का हो अथवा विदेश का—आपको श्रद्धा हो, चुन लीजिए। उसी प्रकाश स्तंभ को लेकर आप अग्रसर होते रहिये। नित्यप्रति उसकी जीवनी पढ़िये, उसके उत्तम गुणों पर दृष्टि स्थिर कीजिए। उसने जो जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये उन पर विशद विवेचन कीजिए।

हमारा मन तभी उत्थान के पथ पर अग्रसर हो सकेगा जब वह किसी उच्च महापुरुष का आश्रय ग्रहण करे। यदि आपके नगर में कोई सद्-पुरुष हैं तो कुछ समय उनके सत्सङ्ग में व्यतीत कीजिए। अपनी रुचि के अनुसार जीवन चरित्र के कुछ पन्नों के अध्ययन का कार्य-क्रम अवश्य रखिए। इन पन्नों में लिखी घटनाओं का प्रभाव आपके अव्यक्त मन पर बहुत पड़ेगा। इनके जीवन के चित्रों से आपको स्वर्ण अवसर प्राप्त करने का अधिक अवसर प्राप्त होगा। आपका हृदय प्रकाश ग्रहण करने के अनुकूल बनेगा। एक एक शब्द आपके मनः प्रदेश में साहस का प्रादुर्भाव करेगा।

आदर्श विहीन उस नाविक की तरह है जिसने बिना पतवार के गहन तूफान में अपनी नाव खोल दी हो। उसे यह ज्ञान नहीं कि किधर जाना है? लक्ष प्राप्त करने के लिए हमें किसी आध्यात्मिक गुरु की स्थापना अवश्य करनी चाहिए।

धर्म व्यवहारिक होना चाहिये

धर्म, पोथी पत्रों में बन्द रहने की, कथा वार्ता में कहे सुने जाने की या पूजा पाठ करने की वस्तु नहीं वरन् जीवन में व्यवहारिक रूप से उतारने की चीज है। धर्म शब्द 'धृ-धारणा' धातु से बनता है। इससे स्पष्ट है कि जो वस्तु धारणकी हुई हो, काम में लाई जाय, व्यवहारिक रूप से प्रयोग हो वही धर्म है किन्तु आज कल धर्म का स्वरूप ऐसा आडम्बरपूर्ण झूठा, और डरावना बना दिया गया है कि उसका उपयोग पण्डे, पुजारियों की जीविका चला देना मात्र रह गया है।

धर्म हर मनुष्य के दैनिक जीवन में नित्य-हर घड़ी, उपयोग में आने वाला तत्त्व है। महात्मा गाँधी का कथन है कि जिस धर्म का हमारे दैनिक आचार व्यवहार पर कुछ असर न पड़े वह एक हवाई खयाल के सिवाय और कुछ नहीं है। मैं तो धर्म को ऐसीही आवश्यक वस्तु समझता हूं जैसे अन्न जल और वायु। नशेबाजों का जैसे अपने नशे की चीजों का ध्यान रहता है, तलब लगती है और उन्हे पाने के लिए हर सम्भव उपाय को काम में लाता है उसी प्रकार धर्म कार्यों की ऐसी चाट और तलब मनुष्य के कलेजे में उठनी चाहिए कि आज के कार्यों में अधिक से अधिक धर्म का समन्वय हो।

मनुष्यता की जिम्मेदारी बड़ी भारी है, इन्सानियत के गौरव की रक्षा करना हर इन्सान का फर्ज होना चाहिए। मानवता की देवी हमें उँगली के इशारे से उन लोगों को दिखाती है जो हमसे छोटे और कमजोर हैं। वह पूछती है कि क्या इन्हें सुखी बनाने और ऊँचा उठाने के लिए तुम कुछ नहीं कर सकते? यदि हम मनुष्यता के कर्त्तव्य को, धर्म को रत्ती भर भी पहिचानते हैं तो गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा कि हम अपने से कमजोरों की भलाई के लिए क्या करते हैं? क्या कर सकते हैं? और क्या करेंगे? धर्म काल्पनिक नहीं व्यवहारिक होना चाहिए।

एकान्त में तुम क्या सोचते हो?

[डाक्टर रामचन्द्र 'महेन्द्र' एम. ए. डी. लिट]

तुम्हारी आकांक्षाएँ क्या क्या हैं? उन्हें प्राप्त करने के तुम्हारे कौन कौन से अवसर हैं? आप जीवन के संग्राममें प्रवेश करने से प्रथम मन, वचन, तथा काया से यह दृढ़ भावना बना लीजिए कि हमारा भविष्य अत्यन्त प्रकाशमान होगा, हम अपनी आकाँक्षाओं को पूर्णतः प्राप्त कर सकेंगे, हम पूर्ण उन्नतिशील तथा सुखी होंगे, हमें सफलता और विजय प्राप्त होगी। सब प्रकार की स्फूर्तिदायक सामिग्री हमें उपलब्ध होगी। सर्व प्रथम इस दृढ़ भावना को अव्यक्त में मजबूती से बिठाइए। एकान्त स्थान में तुम्हें निश्चयों को अविचल रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

आप ऐसा सोचिए जैसे आपके मनोरथ क्रमशः आपकी ओर आकर्षित होकर चले आ रहे हैं। आपकी मुश्किल सरल होती चली आ रही हैं। आप क्रमशः सिद्धि प्राप्त करते जा रहे हैं।

अपनी आशाओं को निर्बल न होने दीजिए प्रत्युत उन्हें और भी तीव्रतर बनाने का उद्योग कीजिए। कोई बात नहीं यदि कुछ प्रतिकूलताएँ दिखाई देती हैं। मार्ग शीघ्र ही स्वच्छ हो जायगा।

आशा पूर्ण शुभ-सूचक पवित्र चित्रों से मन मन्दिर को सजाना भी एक उत्कृष्टता है। इसमें पारंगत बनकर सफलता के मीठे फल चखिए। आप चाहे कोई कार्य हाथ में लें चाहे जो आरम्भ करें चाहे जिस मार्ग का अवलम्बन ग्रहण करें शुभ चित्रों को देखने का आदत बना लीजिए।

एकान्त देखकर अधोगामी मनोविकार भी उत्तेजित हो उठते हैं। कायरता तथा भय मनोबल क्षीण करने लगते हैं। हमारे मन के अव्यक्त स्थल में चिर-संचित भयका संस्कार इतना प्रबल और गहरा जमा हुआ है कि यही दुष्ट जाक्म के अनेक सुखमय स्वप्नों को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। इसे पास मत फटकने दो।

ज्ञान की उपासना कीजिए।

(श्री० गोपालप्रसाद 'वंशी', बेतिया)

ज्ञान से ही मनुष्य संसार में सुख पाता है और इसकी कमी से बन्धन में आकर दुख उठाता है जिसका ज्ञान पूर्ण है सफलता उसका ही साथ देती है। ज्ञान में दोष आ जाने से असफलता की बहुलता से मनुष्य दुखी रहा करता है। इस संसारमें ज्ञान से बढ़ कर कोई भी पवित्र वस्तु नहीं है। यह आत्मा का स्वाभाविक गुण है और परमात्मा ज्ञान स्वरूप है। जब ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान का अन्धकार दूर हो जाता है तब जन्म मरण के बन्धनों से रहित हो मनुष्य अभूत मार्ग का यात्री बन जाता है। ऐसा ज्ञानवान पुरुष सब अवस्थाओं में अपने आप को परमात्मा के अर्पण कर देता है।

हम बाह्य विषयों में जिस सुख को ढूँढना चाहते हैं,वह वस्तुतः अपने अन्दर ही है। हमें उसकी प्राप्ति के लिये क्षुद्रताओं से अलग रहना एवं इन्द्रिय लोलुपता का यथा संभव निराकरण करना होगा। उस वासना को दबाना होगा जो स्थिर शांत आत्म-सागर में काम, क्रोध, लोभादि तरंगें उठाकर उसे अशान्त तथा विक्षुब्ध किया करती है। इन सारी बातों के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। संसार के प्रत्येक भावों की परीक्षा करना, सत्-असत् को यथार्थतः पहचान एवं अपने उपयोगकी वस्तुएें ग्रहण करना तथा अनुपयुक्त का त्याग, यह सब ज्ञान से ही साध्य हैं। यह ज्ञान स्वाध्याय और सङ्गतिसे प्राप्त होता है। सद्ग्रंथों का अध्ययन करते रहना तथा ज्ञानियों का सत्संग, समय और सुविधा के अनुसार प्राप्त करना मनुष्य जीवन को सुधारने के लिए अत्यावश्यक है। जिस समाज या देश में यथार्थ ज्ञानियों की जितनी ही अधिक संख्या होगी उसकी उतनी ही अधिक आत्मोन्नति हो सकेगी और वही मनुष्य, समाज अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त होगा। ऐसे उपयोगी ज्ञान यज्ञ के आयोजन में प्रत्येक मनुष्य को अवश्य ही भाग लेना चाहिए।

अन्तःकरण की चिकित्सा।

[डाक्टर दुर्गाशङ्कर जी नागर सम्पादक "कल्पवृक्ष"]

मनुष्य जिस वस्तु की इच्छा करता है उसे आकर्षित करने का बलवान लोह चुम्बक उसमें है, किन्तु अज्ञान के कारण क्षुद्र वस्तुओं को प्राप्त करने को दौड़ रहा है। यह सब कुछ अंतःकरण की स्थिति पर निर्भर है। अन्तःकरण की उच्च स्थिति सामर्थ्य सम्पन्न है तथा नीच स्थिति सामर्थ्य हीन है।

आज एक व्यक्ति तुच्छ माना जाता है, उसे कोई नहीं पूछता। कल वही राष्ट्र का नायक बन जाता है। आज एक मनुष्य घर-घर भीख मांग रहा है, कल वही धनाढ्य हो जाता है। असंख्य मनुष्यों को धन अन्न बांटता है एवं भोजन कराता है। आज एक मनुष्य साधारण हीन बुद्धि का है कल वही प्रतिभा सम्पन्न होकर संसार को हिला डालता है तथा महापुरुष माना जाता है। मनुष्य में ऐसा विचित्र आकर्षण बल है और यह उसकी अन्तःकरण की उच्च स्थिति पर अवलम्बित है।

ऐ मनुष्य! तुझमें अद्भुत सामर्थ्य का स्रोत है। तुझसे संसार में कोई बड़ा नहीं है। तेरी महिमा अपार है। अब भी तू अपने को गोबर का कीड़ा मान रहा है। उठ, जागृत हो! अन्तकरण की स्थिति को बदल! प्रयत्न कर! अपने आत्म स्वरूप में स्थिति हो और उसकी ज्योति से अद्भुत सामर्थ्य प्रकट कर! सब हिचकिचाहट, दुर्बलता, अशक्तता को दूर करदे। सब बोझ उतारदे। सब संशयों को, सन्देहों को भस्मीभूत करदे। अपने आप से बाहर मत भटक। अपने केन्द्र में, आत्मस्वरूप में जमा रह। विश्व से एक स्वर हो जा और सारे संसार को तू चलाने लगेगा।

दुख से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है- अपने अंतःकरण की स्थिति को उच्च बनाओ। अपने में उतरो। अपनी आत्मा के मंगलमय स्वरूप के दर्शन करो और दुःख की सत्ता निःशेष होजाय

सब दुःखों से मुक्त होने का सब प्रलोभनों ऊपर उठने का एक मात्र उपाय अपने आत्म स्व का अनुभव करना है। किसी का सहारा पकड़ो। अकेले खड़े रहो। अपने अंतर स्थिति सत्ता-परमात्म सत्ता-का ही एक आधार रखो। में पूर्ण विश्वास रक्खो। उसी में निवास करो। कोई भी मनुष्य तुम्हारे विरुद्ध आवाज न सकेगा और कोई भी तुम्हें सत्पथसे न हिला स

परमात्मा में, आत्मस्वरूप, में दृढ़ श्रद्धा करने से ही अन्तःकरण की उत्कृष्ट स्थिति होती सब दुःखों को, क्लेशों को, दीनता को जीवन को दिव्य बनाती है। यही चिकित्सा है।

सद्गुणों से विश्व विजय।

(पं० तुलसीराम शर्मा वृन्दाबन)

बशीकरण का सर्व श्रेष्ठ उपाय अपने को सद्गुण बनाना है। सद्गुणों से मनुष्य और देवता ही नहीं परमात्मा भी प्रसन्न होते हैं और उसके बश होजाते हैं।

श्री लक्ष्मण जी ने हनुमान से राम की अ संकेत करके कहा—

अहमस्याऽवरो भ्राता गुणैर्दास्यमुवागतः।

वाल्मीकि रा. कि. सं. ४।१

मैं इन (राम) का छोटा भाई हूं। इनके गु के कारण इनका दास होगया हूं।

महर्षि वेद व्यास जी ने युधिष्ठिर से कहा—

तथापिनिघ्नं नृपतावकीनैः प्रह्वीकृतंमे हृदयं गुणौघै

किरात ३।१२

हे युधिष्ठिर! हम सरीखे पुरुषों को सर्वत्र दृष्टि रखनी चाहिए तो भी तुम्हारे गुणों से पि हुआ मेरा मन तुम्हारे कब्जे में होगया है।

श्री विष्णु भगवान ने राजा पृथु से कहा है—

वरं च मत्कंचन मानवेन्द्र वृणीष्वतेऽहं गुणशील यंत्रितः ॥ भा० ४।२०।१६

हे राजन् ! मुझसे कुछ वरदान मांग, तेरे गुण और शील से मैं तेरे बश में होगया हूं।

एक समय सुरपति इन्द्र ने राजा हरिश्चन्द्र से कहा—

तितिक्षा दम सत्याद्यैः स्वगुणैः परितोषितः।
मार्कण्डेय पु. अ. ८।४६

हे राजन् ! तितिक्षा (सहन शीलता) दम इन्द्रिय निग्रह) सत्य आदि अपने गुणों से आपने मुझे प्रसन्न कर लिया है ।

येषां गुण गणैः कृष्णादौत्यादौ भगवान् कृतः।
भाग १।७।१७

पाण्डवों के सद्गुणों ने भगवान कृष्ण से दूत और सारथी के काम करालिये।

यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः।
तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमापइवस्वतम्।
भाग १।७।४७

सद्गुणों से भगवान प्रसन्न होते हैं और सद्- के लिए संसार नमता है जैसे जल नीचे को [illegible] है।

[illegible]सलिए जो कोई दूसरों को वश में करने की सीखना चाहते हों उन्हें चाहिए कि अपने [illegible] त्याग, प्रेम, सदाचार, सत्य व्यवहार [illegible]ता, सेवा, मधुर भाषण निरालस्यता आदि को पैदा करें। सद्गुणों से ही दूसरे के हृदय [illegible]ीत कर अपने वश में किया जा सकता है। साधन के लिए किसी के साथ कपट धूर्तता चालबाजी के मंत्र तंत्र किये जाँय तो वे [illegible]स्थायी होते हैं और उनसे लाभ के स्थान पर हानि [illegible]धिक होती है।

———

प्रेम-ही जीवन है।

[ले० – विद्याभूषण पं० श्रीमोहनजी शर्म्मा]

प्रेम जीवन की शक्ति है । इसकी छाया में आत्मा विकास को प्राप्त होकर अनन्त सुख का अनुभव करती है। व्यवहारिक दृष्टि से विनय प्रेम का पिता और मधुर वाणी माता है। जो इस तत्व को हृदयंङ्गम कर तदनुसार आचरण करते हैं—उन पर प्रेम की प्रसन्नता हुये बिना नहीं रहती। प्रेम परम-धर्म है—इसकी श्रेष्ठता लोक पूजित है। इसके विधिवत पालन से मनुष्यत्व की इति—पूर्णता मानी जाती है। इसका उद्गम केन्द्र प्राकृतिक संसार है—यह अन्तस्तल से निसृत होने वाली पवित्र वस्तु है। आत्मोत्सर्ग या आत्मसमर्पण की पुनीत भावना का ही नाम प्रेम है। दूसरों की सेवा–सहायता से तल्लीन हो जाना प्रेम है। विश्व-कल्याण के नाम पर विश्व-सेवी होने का भाव पोषण करना और समस्त प्राणियों को आत्मवृत्त समझना यह प्रेम का सर्वोच्च भाव है। प्रेम एकदम स्वाधीन पदार्थ है पराधीन नहीं। प्रेम के मार्ग पर प्रेमी अपने आपको बलि दे बैठता है—यही सर्वोत्कृष्ट प्रेम धर्म है। इसके विपरीत जहाँ स्वार्थ की साधना है, वहाँ पावन प्रेम की गुजर नहीं हो सकती। इसके सम्पादन से मनुष्य अलौकिक कार्यों का सम्पादन कर सकता है ? इसीलिये यह आत्मा की और जीवन की सर्वोच्च शक्ति है।

प्रेम की अमल साधना से दुर्जन सज्जन सबको वशीभूत किया जा सकता है। यहां तक कि भवभय-भञ्जन भगवान् भी प्रेम के आधीन हैं। जिस हृदय मन्दिर में प्रेम-गंगा नहीं लहराती-उसे मरघट और मसान तुल्य ही समझना चाहिये। प्रेम इस सृष्टि का सारभूत पदार्थ है। इसे आयास पूर्वक सम्पादन कर लेना ही जीवन की सीमा है। प्रेम से प्राप्त आनन्द का अनुभव गूँगे के गुड़ जैसा अनिर्वचनीय

और अद्भुत होता है। ऐसे प्रेमोपासक धरित्री के क्रोड़ को सुख की सेज और अन्तरिक्ष को ओढ़ने की चादर मानकर भी अपने को धन्य अनुभव करते हैं। जिसे प्रेम पदार्थ प्राप्त नहीं हुआ—इस अवनी-तल पर उसका जीवन व्यर्थ है। अतः मानव के लिये प्रेम की साधना अपरिहार्य्य है। योग या भोग ये सब प्रेम बिना नहीं हो सकते। सर्व प्रकार सुखों की उपलब्धि व सफलता के लिये प्रेम की खोज व प्रेमोपासना आवश्यक है। प्रेम रस में वह अपूर्व प्रभाव है कि उससे समस्त मल विदूरित हो जाते हैं। जीवन का लोभ, धन का मोह आदि सब नष्ट हो जाता है। प्रेम का प्रभाव तीव्र है, जिसमें इसकी स्थिति हो जाती है फिर वह इसे परित्याग नहीं कर सकता।

प्रेम विद्युत प्रवाह के समान है और यह प्रत्येक प्राणी के हृदय में अवस्थित है। जहाँ मनुष्यों में परस्पर विचार साम्य होता है वहाँ इसका विकास बिना प्रयास ही निस्वार्थ भाव से हो जाता है। अर्थात् जहाँ भावों में समानता है वहीं प्रेम है। जो स्वभाव से उदार व निस्वार्थ हैं और शान्ति-पूर्ण वातावरण में बिहार करने के अभ्यासी हैं, वही प्रेम की सधना को पूर्ण कर सकते हैं। प्रेम इष्ट वियोग और अनिष्ट योग में परीक्षा की कसौटी पर चढ़ता है किन्तु सच्चे साधक इन दुनिवार्य अवस्थाओं में प्रेम से विचिलित नहीं होते। प्रेम का तत्व यही है कि प्राणी मात्र को प्रेम की दृष्टि से देखा जाय। यह समग्र संसार जगतकर्त्ता के सौन्दर्य प्रेम का ही प्रतीक है। प्रेम के साधक के लिये कहा है कि "प्रेम मय शब्दों के अतिरिक्त और कुछ न कहो। उसी की मधुर प्रतिध्वनि तुम्हें मिलेगी।"

"Speak nothing but kind words and you will have nothing but kind echoes."

प्रेम मनुष्य हृदय की सर्वोत्कृष्ट वृत्ति है। यही प्रेम जब ऊर्ध्व जगत में कार्य करने लगता है, तब यह वास्तविक प्रेम नाम से अभिहित होता है। इसलिये आत्म विद्या के विद्यार्थी के लिए अपने हृदय की प्रेम प्रवृत्ति विकसित कर उसे समस्त विश्व में सम्प्रसादित करने का विधान है। इसे केवल अपने माता-पिता, स्त्री पुत्रादि परिवार तक ही सीमित रखने से इसका श्रेष्ठ फल प्राप्त नहीं होता। बल्कि ईश्वर प्रेम सर्वथा सार्थक पूर्ण तथा असीम फल दायक है।

प्रेम में उस दैवी परम ज्योति का पुण्य प्रकाश है। प्रेम भक्ति योग है, राजयोग, ज्ञान योग और ब्रह्मयोग का आधार है। प्रेम में ही सब धर्मों का विस्तार है। प्रेम में दिव्य सौम्यता, और प्रचण्ड शौर्य तेज विद्यमान है। प्रेम इष्टदेव है, प्रेम साधना है, प्रेम अखण्ड ध्यान है अखण्ड ज्योति है, अनन्त मूर्त्ति है, आनन्द का लहराता हुआ समुद्र है प्रेम सिद्ध मन्त्र है, सिद्ध तन्त्र है और प्रेमकी भावना सिद्धि दाता है।

सात्विक सहायताएं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्न सहायताएँ प्राप्त हुईं। अखंड ज्योति इन महानुभावों के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

१५) राजकुमारी ललन मैनपुरी स्टेट।
१०) श्री केशरीमलजी कोठारी बम्बई।
६) श्री मथुराप्रसादजी वैद्य, मेगवत बींजा।
५) श्री हरीराम जी लखीमपुर।
२) श्री जानकीप्रसादजी करन, औरंगाबाद।
२) पं० लक्ष्मीनरायण शास्त्री, विल्हेडी।
१।) प्रो० आर. के. शर्मा, पूना।
१) पं० रामप्यारे शुक्ल, पुरी।
१) पं० चतुर्भुज शर्मा, बारॉं।

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें।

जो ज्ञान युगों के प्रयत्न से मिलता है उसे हम अनायास ही आपके सामने उपस्थित करते हैं।

मूल्य

(१) मैं क्या हूं ।=)
(२ सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
(४) पर काया प्रवेश ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
(८) भोग में योग ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
(१५) ईश्वर कौन है? कहां? कैसा है? ।=)
(१६) क्या धर्म? क्या अधर्म? ।=)
(१७) गहना कर्मणो गतिः ।=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर प्रकाश ।=)
(१९) शक्ति संचय के पथ पर ।=)
(२०) पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा ।=)
(२१) आत्म गौरव की साधना ।=)
(२२) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान ।=)
(२३ मित्र भाव बढ़ाने की कला ।=)
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकाश ।=)
(२५) आगे बढ़ाने की तैयारी ।=)
(२६) अध्यात्म धर्म का अवलम्बन ।=)
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन ।=)
(२८) ज्ञान योग कर्मयोग, भक्ति योग ।=)
(२९) यम-नियम ।=)
(३०) आसन और प्राणायाम ।=)
(३१) प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि ।=)
(३२) तुलसी के अमृतोपम गुण ।=)
(३३ आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान ।=
(३४) मैस्मरेज्म की अनुभव पूर्ण शिक्षा ।=
(३५ ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ।=
(३६) हस्त रेखा विज्ञान ।=
(३७) विवेक सतसई ।=
(३८) संजीवन विद्या ।=
(३९) गायत्री की चमत्कारी साधना ।=
(४०) महान जागरण ।=

अन्य प्रकाशकों की कुछ उत्तमोत्तम पुस्तकें।

(१) सर्प विष चिकित्सा ॥)
(२) जल चिकित्सा ॥)
(३) गर्भ निरोध [संतान होना रोकना] ।-)
(४) नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा ॥-)
(५) दूध से सब रोगों का शर्तिया इलाज ॥)
(६) संक्षिप्त दुग्ध चिकित्सा ।=)
(७) प्राकृतिक चिकित्सा प्रश्नोत्तरी ।)
(८) प्राकृतिक चिकित्सा का सूर्योदय (दोनों भाग) ॥)
(९) बुढ़ापा और बीमारी से बचने के सरल उपाय ॥)
(१०) उपवास और फलाहार चिकित्सा ॥)
(११) मिट्टी सभी रोगों की रामवाण औषधि है ।=
(१२) पृथ्वी की रोगनाशक शक्ति
(१३) नवीन चिकित्सा पद्धति
(१४) हमें क्या खाना चाहिए
(१५) तम्बाकू प्राण घातक विष है
(१६) धूप हवा और सरदी से आरोग्य
(१७) ज्वर चिकित्सा
(१८) वस्त्रों का स्वास्थ्य पर भयंकर प्रभाव
(१९) धातु दुर्बलता की चिकित्सा
(२०) भोजन से आरोग्य रक्षा और चिकित्सा

नोट-कमीशन देना कतई बन्द है। आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम अपना

वहिर्मुखी मानव से-

[लेखक—श्री० शिवस्वरूप शर्मा "अचल"]

हे वहिर्मुखी; अन्तर्मुख हो !
यह वास्तु जगत माया—निर्मित,
काया में हमने क्या पाया !
कुछ श्वास, चेतना, स्पन्दन,
वैभव ने जिसको ललचाया !!

क्षण भंगुर सिन्धु तरङ्गों सा,
अस्थिर, उच्छ्वास पुंज, जीवन !
यह समय उधेड़ बुन करता
कर्मों से नियति—सुदृढ़—जीवन !!
कर्त्तव्य किया, फल मिलने पर—
पागल ! फिर क्यों दुख हो, सुख हो ?
हे वहिर्मुखी, अन्तर्मुख हो !

कलिका—संपुट में ओस—बिन्दु,
कुछ क्षण भर का इतिहास लिये !
जिसका मिट जाना ही परिचय—
है स्निग्ध, मधुर, मृदु हास लिये !!

पावस—रजनी, घनघोर घटा,
झंझावातों का वेग प्रबल !
विद्युत् अस्तित्व बता देती,
पल में चमका कर छोर सकल !!
स्मिति जैसी यह ज्योति लिये—
मानव ! जगती के सम्मुख हो !
हे वहिर्मुखी; अन्तर्मुख हो !!